मुखपृष्ठ
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यसुधा
वर्ष: 4, अंक 81, मार्च(द्वितीय), 2020

राय साहब की चौथी बेटी

[भाग-4]

प्रबोध कुमार गोविल

गतांक से आगे

ये केवल परमेश्वरी को ही नहीं, बल्कि उसके पति को भी लग रहा था कि ठेकेदारी में उसका मन नहीं लग रहा है। लेकिन शायद ऐसा लगने के जो कारण परमेश्वरी के दिल में थे, वो उसके मन में नहीं थे। उसे तो ये लगता था कि –

इस काम में जितनी मेहनत है, उससे ज़्यादा बेईमानी है।

इस काम में जितनी आमदनी है उतना सुकून नहीं है।

इस काम को करने में वो तालीम काम नहीं आती जो स्कूल कॉलेज में दिन रात मेहनत करके ली है।

शायद इसीलिए जब एक रात परमेश्वरी ने उसे वो चिट्ठी दिखाई तो न केवल उसने ध्यान से पूरा खत पढ़ा, बल्कि परमेश्वरी की बात मान कर एक बार वहां जाने का इरादा भी कर डाला।

चिट्ठी राजस्थान के जयपुर शहर के पास एक छोटे से गांव से आई थी। परमेश्वरी की बड़ी बहन की सहेली ने लिखी थी जो वहां कई बार जा आई थी, और वहीं जाकर बस जाने का इरादा भी रखती थी।

इस गांव में राजस्थान के एक सामाजिक कार्यकर्ता ने एक स्कूल खोला था, जिसकी खास बात ये थी कि वो केवल लड़कियों के लिए ही था। और वहां रहने का एक छात्रावास बना कर वो दूर- दूर की ऐसी लड़कियों को भर्ती कर रहे थे जो वहां रह कर पढ़ाई करें। पढ़ाई भी ऐसी कि जिससे लड़कियां घर गृहस्थी की तमाम बातें सीख कर अपने पैरों पर खड़ी हो सकें। अपने घर को चलाने की पूरी ज़िम्मेदारी लेने के काबिल बन सकें।

उन्हें ऐसे ही शिक्षक और कार्यकर्ता भी चाहिए थे जो वहीं रहकर सेवा भावना से लड़कियों को पढ़ाने का काम करें।

ये बात अब केवल परमेश्वरी और उसके पति के बीच ही नहीं रही, बल्कि दौरानियों- जेठानी के साथ आपसी बातचीत के बाद लालाजी तक भी पहुंच गई।

लालाजी ने सारी बात को एक अलग ही परिप्रेक्ष्य में लिया।

उन्हें लगा कि बहू परमेश्वरी लोकल होने के कारण कभी शहर से बाहर निकल ही नहीं पाती है, जबकि बाक़ी बहुएं अपने पीहर, या पति की नौकरी की जगह आते - जाते रहने से घूम - फ़िर आती हैं।

उन्होंने खुद आगे बढ़ कर बेटे से कहा, जाओ बेटा, तुम लोग भी थोड़े दिन राजस्थान में घूम आओ।

इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने अपनी छोटी बेटी से कहा कि उनके बेटे को थोड़े दिन वो संभाल कर रखे।

बेटा अब छह - सात साल का हो गया था और स्कूल जा रहा था।

लालाजी का मानना था कि थोड़े दिन घूम- फ़िर आने के बाद दोनों का मन यहां काम में लग जाएगा।

उन्हें ये इत्मीनान था कि बहू का पीहर यहीं है तो वो यहां से लंबे समय तक कैसे दूर रह सकेगी।

इस तरह शादी के बाद शायद पहली बार राजस्थान घूमने का कार्यक्रम बन गया। परमेश्वरी को ऐसा लगा जैसे बहुत दिनों के बाद खुली हवा में अपनी ज़िंदगी के बारे में कुछ सोच पाने का माहौल भी मिला, और मौक़ा भी।

उधर राय साहब के जाने के बाद से अम्मा की लगातार बढ़ रही हताशा अब शायद अवसाद में बदलने लगी थी। परमेश्वरी के ब्याह ने भी उनका जी हल्का नहीं किया था। ऐसा घर, जिसमें कोई कमाने वाला न हो, और रोग - बीमारी का आना -जाना लग जाए बहुत ही भयावना सा हो जाता है।

परमेश्वरी के छोटे भाई को भी अब नौकरी धंधे की चिंता सालने लगी थी, और वो इसकी तलाश में रहने भी लगा था।

राजस्थान के उस गांव में आकर परमेश्वरी और उसके पति को बड़ा सुकून सा मिला। बल्कि वहां तो उन्हें काम करने की पेशकश तक कर दी गई।

अब वकालत की डिग्री की स्कूल में क्या वकत होती, पर हां अंग्रेज़ी के एम ए आसानी से मिलते कहां थे।

स्कूल में पढ़ाने की पेशकश की गई तो परमेश्वरी के पति को उसमें कई फ़ायदे दिखाई दिए। पहला तो यही था कि वहां साथ में परमेश्वरी की नौकरी का भी अवसर था। बैठे- बैठे उसकी नौकरी का भी बंदोबस्त हो रहा था।

दूसरे, लड़कियों का स्कूल होने से बिटिया की पढ़ाई का अच्छा और मुफ़्त जैसा बंदोबस्त हो रहा था।

घर की उथल- पुथल से परमेश्वरी की छोटी बहन की पढ़ाई भी बीच में छूट कर रह गई थी। यदि यहां रहें तो उसे भी साथ में ला सकते हैं, ये सोच ज़ोर मारने लगा। छोटा सा गांव था, न ज़्यादा कोई खर्च और न कहीं आने जाने के लिए साधन वाहन का झंझट। स्कूल ने अपने ही कच्चे साधारण से मकान बना रखे थे जो काम करने वालों को दिए जाते थे।

लोग कहते थे कि बिल्कुल गांधीजी के आश्रमों जैसा माहौल था। परमेश्वरी जैसे किस्मत के सताए लोगों के लिए तो जैसे मंदिर था। दोनों पति- पत्नी ने वहां नौकरी कर ली। एक दिन पति जाकर लालाजी को भी समझा- बुझा कर आ गया, और अपनी ज़रूरत भर का सामान भी उठा लाया। अब ये सोचकर उसे दुख ज़रूर हुआ कि वहां केवल लड़कियों का विद्यालय होने के कारण अपने बेटे को साथ नहीं रख सकेंगे। बेटा तो स्कूल जाने लगा था। लेकिन उसका मन इस बात के लिए भी तैयार न हुआ कि बेटे को यहां रिश्तेदारों के जमघट में अकेला छोड़ कर जाए।

पहले तो उसे हिम्मत बंधाई, और फिर खुद अपने को हिम्मत बंधाई, और तब जी कड़ा करके उसे पढ़ने के लिए किसी दूसरे शहर के बोर्डिंग स्कूल में दाख़िल करा दिया। इस तरह "जगदीश भवन" का जगदीश परमेश्वरी के साथ रहने के लिए घर छोड़ आया। एक असरदार नेता के इस गांधी वादी विद्यालय में आकर परमेश्वरी एक बार फिर जैसे राय साहब की चौथी बेटी बन गई।

धीरे- धीरे उसे याद आने लगा कि उसके पिता ने उसे घर की रसोई में ही खर्च हो जाना नहीं सिखाया था, बल्कि अपनी पढ़ाई -लिखाई का कुछ सदुपयोग करने की तालीम भी दी थी। जहां परमेश्वरी की बाक़ी सभी बहनें और ससुराल में सब दौरानियां, जेठानी व ननदें अपने - अपने घर के नोन तेल लकड़ी में उलझी हुई थीं, वहीं परमेश्वरी देश भर से आई सैकड़ों लड़कियों को शिक्षित करने के यज्ञ में शामिल हो कर अपने पति का भी हाथ बंटा रही थी। उसे अपने पीहर के घर की भी पूरी चिंता रहती थी। वो जब भी मौक़ा मिलता, वहां हो भी आती थी।

स्कूल में गर्मियों में पूरे दो महीने की छुट्टियां होती तब उन लोगों को अपने ससुराल जाने का अवसर भी मिलता।

इस छोटे से गांव में आकर परमेश्वरी और उसके पति की दुनिया ही बदल गई। ये विद्यालय क्या था, एक मिशन था जो समाज में फैली बुराइयों, अशिक्षा, स्त्रियों की उपेक्षा आदि के ख़िलाफ़ लोगों को जागरूक करने के मकसद से संचालित हो रहा था। इस विद्यालय की स्थापना की भी एक भावभीनी कहानी थी। देश की आज़ादी के लिए काम कर रहे एक संगठन के कुछ प्रभावशाली लोगों ने राजस्थान की पिछड़ी हालत देख कर वहां के एक गांव में रह कर लोगों की जन जागृति का अभियान छेड़ा।

इसी बीच अभियान के प्रमुख नायक की बेटी बहुत ही छोटी आयु में एक अल्पकालिक बीमारी की शिकार होकर काल के मुंह में समा गई।

वो लड़की गांव के पास बने एक छोटे से तालाब के किनारे बच्चों के साथ खेलते हुए तालाब की गीली मिट्टी निकाल कर उससे छोटी- छोटी ईंटें बनाया करती थी। एक बार मां के पूछने पर बेटी ने जवाब दिया कि इन ईंटों से वो एक कमरा बनाएगी, और उस कमरे में बैठ कर वो गांव की छोटी लड़कियों को पढ़ाया करेगी। नन्ही सी बेटी की इस बात को ही मां- बाप ने लड़की की मृत्यु के बाद नियति का इशारा समझ कर यहां ये विद्यालय खोल दिया।

यहां रहने वाले सभी लोग शुद्ध खादी के कपड़े पहन कर रहते और शुद्ध सादा - सात्विक शाकाहारी भोजन करते।

परमेश्वरी को यहां आकर बहुत अच्छा लगा। उसके पति को भी। सूट और टाई लगाकर मोटर साइकिल पर घूमना अब बंद हो गया। सफ़ेद खादी के कुर्ते पायजामे में पैदल चलना अब उसका शौक़ ही नहीं बल्कि आदत बन गया। परमेश्वरी भी मोटी खादी की साड़ियां पहनती।

किन्तु ये सब बदलाव इतने अकस्मात हुए कि उधर लालाजी को समझ में न आया कि सहसा बिखर से गए अपने परिवार को कैसे संभालें।

जो बच्चे सरकारी नौकरी में इधर- उधर चले गए थे उनका वापस आना तो मुश्किल भी था, और इसमें कोई बुद्धिमानी भी नहीं थी, किन्तु परमेश्वरी और उसके पति को लालाजी ने वापस बुला लिया।

उनका कहना था कि अचानक जाने से न तो ठेकेदारी की कोई माकूल व्यवस्था बन पाई है और न कारोबार की।

उन्होंने बच्चों से कहा कि उनके भविष्य को देखते हुए वे जैसा उचित समझें, वैसा निर्णय लें। पर जाने से पहले फ़ैले - बिखरे संयुक्त परिवार को इस तरह समेट दें ताकि न तो किसी को असुविधा हो,और न ही किसी को नुक्सान।

एक तरह से ये घर के बंटवारे और अपना- अपना हिस्सा संभाल लेने का संकेत ही था। इस बीच सभी जगह गहरी उथल- पुथल हो गई थी।

परमेश्वरी के पीहर का नक्शा बदल गया था। अम्मा ज़िन्दगी से लड़ती, अपने रोग से लड़ती और अपने परिवार के भविष्य के सपनों से लड़ती हुई परलोक सिधार गई थीं। परमेश्वरी के छोटे भाई की नौकरी लग जाने के बाद एक सुशील गुणवती कन्या से उसका विवाह भी हो गया था।

लंबे -चौड़े घर के बेकार पड़े कुछ हिस्से की ज़मीन को बेचकर उसने अम्मा की बीमारी और अपने विवाह के दौर में हुए कर्ज़ तो चुका ही दिए थे, साथ ही अपनी आर्थिक स्थिति भी कुछ पुख़्ता कर छोड़ी थी।

छोटी बहन जो परमेश्वरी के पास चली गई थी, उसका विवाह भी कर दिया गया। यहां एक चमत्कार हुआ, परमेश्वरी की बहन पुष्पेश्वरी को लालाजी ने ही अपने सबसे छोटे बेटे के लिए पसंद करके उसे अपने घर की सबसे छोटी बहू बना लिया। इस तरह दोनों बहनें भी आपस में अब जेठानी- देवरानी बन गईं। लेकिन विधाता ने राय साहब के इस परिवार को एक बेहद बुरी खबर भी सुनाई। परमेश्वरी की दूसरे नम्बर की बड़ी बहन इस बीच विधवा हो गई। मझले बहनोई थोड़े दिन की अचानक बीमारी के बाद दुनिया छोड़ गए।

जाते -जाते वो अपनी धर्मपत्नी पर तीन बेटियों के परिवार की ज़िम्मेदारी छोड़ गए। अब फ़िर से कड़ी मेहनत और पढ़ाई के तार जोड़ कर बहन ने नौकरी भी की, और डिग्रियां भी लीं। अपने बिखरे घर को संभाला।

परमेश्वरी की छोटी बहन का लालाजी के परिवार में ही बहू बन कर आना एक तरह से परमेश्वरी की एक बड़ी जीत थी।

इससे पूरी तरह ये सिद्ध हो गया था कि लालाजी अपनी सबसे ज़्यादा पढ़ी -लिखी काबिल बहू से बेहद खुश हैं, बल्कि उसे उसके घर में मिले संस्कारों को भी पसंद करते हैं। उनका सम्मान करते हैं।

और शायद लालाजी को कहीं न कहीं ये अहसास भी था कि एक संपन्न परिवार की सुन्दर और शिक्षित लड़की विवशता में ही उनके परिवार में उनके लड़के की दूसरी पत्नी बन कर चली आई है और उसने सुहागन होने के पहले दिन से ही पराये मातृत्व को स्वीकार किया है, वे मन ही मन परमेश्वरी के प्रति कृतज्ञता से भरे रहते थे।

इस बात को परमेश्वरी भी खूब समझती थी।

कभी कभी उसे ये महसूस भी होता था कि लालाजी घर के कई मामलों में बात करते समय महिलाओं की राय लेने के बहाने परमेश्वरी की इच्छा और विचार जानने की चेष्टा किया करते हैं।

लालाजी की धर्मपत्नी, अर्थात परमेश्वरी की सास का भी देहावसान जल्दी ही हो गया था। ये केवल इन दो घरों की ही बात नहीं थी, बल्कि उथल- पुथल का ये दौर तो पूरे देश में आया था।

इस बीच देश आज़ाद हो गया था। देश का बंटवारा हो गया था, पाकिस्तान बन गया था। भीषण त्रासदी से देश गुज़रा था। हिन्दू- मुस्लिम वैमनस्य ने सिर चढ़ कर तांडव मचाया था। और ये शहर तो वैसे भी बेहद संवेदनशील माना जाता था। यहां मुस्लिम जनसंख्या लगभग हिन्दुओं के बराबर ही थी।

यहां रहने और पढ़ने का ही नतीजा ये था कि परमेश्वरी और उसके पति की उर्दू भाषा की जानकारी भी बेहद अच्छी थी। दोनों ही अच्छी उर्दू जानते थे।

पति ने तो अंग्रेज़ी साहित्य पढ़ा भी था।

किन्तु साहित्य के मामले में तो शायद परमेश्वरी के अवचेतन में बचपन में पिता से सुनी वो बात हमेशा बसी रही कि "लिटरेचर की बात बोरियत भरी" होगी।

शहर में अब चर्चा ये भी फैली कि कभी जिस लड़के का रिश्ता परमेश्वरी के लिए आया था और उसके सिनेमा के रुझान के कारण परमेश्वरी के घर वालों ने उसे ठुकरा दिया था, वही लड़का बंबई में अब बड़ा हीरो बन गया है, और उसे अभी - अभी मीना कुमारी के साथ एक फ़िल्म में बड़ी कामयाबी मिली है।

सच ही तो है, जहां चाह वहां राह।

वो लड़का तो तन मन धन से अपने सपने के पीछे लगा ही रहा, अपनी मंज़िल से कहता हुआ..." तू गंगा की मौज, मैं जमना का धारा, हो रहेगा मिलन, ये हमारा - तुम्हारा !" इतना ही नहीं, बल्कि लोग कहते थे कि वो और उसके परिजन शहर के शायरों और कवियों को काम देने के लिए बंबई बुलाने लगे हैं।

नीरज, राही मासूम रज़ा जैसे लोग बंबई का रुख कर रहे थे। लेकिन ये सब बातें केवल कांच की खिड़की से दिखते उन दृश्यों की मानिंद थीं , जो किसी लंबे सफ़र के मुसाफ़िर को राह में दिखते भी हैं और बदलते हुए आंख से ओझल भी होते चले जाते हैं।

परमेश्वरी का अब अपना एक जहान था, अपना एक सफ़र था। उसे ये सोच -सोच कर गर्व और कौतूहल होता था कि राजस्थान के जिस विद्यालय में जाकर अपने पति के साथ वो लड़कियों को पढ़ाने की सेवा जैसी नौकरी कर आई है, उसी के संस्थापक अब देश के आज़ाद होते ही राजस्थान राज्य के मुख्यमंत्री बन गए हैं। दोनों पति - पत्नी को याद आता था कि कैसे उस छोटे से गांव की पगडंडियों पर उनसे बातें करते हुए वे लोग घूमा करते थे, और वो पूछा करते थे कि बच्चियों को कोई तकलीफ़ तो नहीं है, पढ़ने में जी लगाती हैं या नहीं !

क्रमश:

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें